आचार्य शंकर और तुलसीदास के ग्रन्थों में योगतत्त्व

(एक तुलनात्मक परिशीलन)

योग विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

में

पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की

संक्षेपिका



निर्देशक :

डा. ईश्वर भारद्वाज

पी-एच.डी. (योग)

विभागाध्यक्ष

शोधकर्ता :

मनोज पँवार

योग विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तरांचल)

2001

आचार्य शंकर और तुलसीदास के ग्रन्थों में योगतत्त्व

(एक तुलनात्मक परिशीलन)

योग विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

में

पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की

संक्षेपिका



निर्देशक :

डा. ईश्वर भारद्वाज

पी-एच.डी. (योग)

विभागाध्यक्ष

शोधकर्ता :

मनोज पँवार

योग विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तरांचल)

2001

संक्षेपिका

योग-साधना के क्षेत्र में परम सिद्धि को प्राप्त करने वाले महापुरुषों में आचार्य शंकर और भक्तप्रवर गोस्वामी तुलसीदास अग्रगण्य हैं। इनकी विभूतिमत्ता और अगाध ज्ञानराशि को देखते हुए इन्हें परमात्मा के तेज के अंश से सम्भूत मानना पड़ता है। निश्चय ही उन्हें अपरिमित ज्ञान की प्राप्ति योग-साधना से प्राप्त हुई होगी।

यद्यपि आचार्य शंकर और सन्त तुलसीदास दार्शनिक क्षेत्र में दो विभिन्न मार्गों के पथिक हैं किन्तु दोनों का लक्ष्य परब्रह्म की प्राप्ति ही है। 'कैवल्य' या 'मोक्ष' प्राप्ति के उपायों में दोनों मनीषियों ने योग-साधना के महत्व को स्वीकार किया है। एक ज्ञानयोग के समर्थक हैं तो दूसरे भक्तियोग के। ये दोनों विद्वान् योगशास्त्र के ज्ञाता भी थे और प्रयोक्ता भी। इनकी परस्पर तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि दोनों ही अपने-अपने स्थान पर महनीय और अतुलनीय हैं। अतएव केवल योगतत्त्व के अन्वेषण की उत्कण्ठा के वशीभूत होकर ही यह तुलनात्मक परिशीलन मेरे द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत तुलनात्मक शोध-प्रबन्ध में नौ अध्याय प्रायोजित हैं, जिनमें विवेच्य विषय का समग्र अनुशीलन स्वीकृत प्रारूप के अनुसार किया गया है। प्रथम अध्याय को विषय-प्रवेश के रूप में नियोजित किया गया है। प्रथम आचार्य शंकर का व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व अन्तः साक्ष्य और वतिः साक्ष्य के आधार पर अंकित किया गया है जिसके अनुसार आद्य शंकराचार्य का जन्म सम्वत् 854 वि0 बैशाख शुक्ला पंचमी (सन् 788 ई0) को केरल प्रदेश के कालडि ग्राम में हुआ। इनके पिता का नाम श्री शिवगुरु और माता का नाम श्रीमती सती था। उस समय हिन्दू जनता अनेक अवैदिक मत-मतान्तरों के जाल में फँसी थी। जब ये 3 वर्ष के थे, तभी इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। जब ये पाँच वर्ष के हुए तो विद्याध्ययन हेतु गुरु-गृह गये और दो वर्षों में ही वेद-वेदांग का तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लिया। आठ वर्ष की अवस्था में गोविन्द भगवत्पाद से संन्यास की दीक्षा ली। काशी में इनकी भेंट आत्मज्ञानी चाण्डाल से हुई। वहीं पर उन्होंने मनीषा पंचक स्तोत्र की रचना की। 12 वर्ष की

अवस्था में काशी से बद्रीनाथ की ओर गमन किया। वहाँ व्यास गुफा में 4 वर्ष तक रहकर ब्रह्मसूत्र, मुख्य उपनिषदों एवं गीता का भाष्य लिखा। ये भगवान् शंकर के अवतार माने जाते हैं।

शंकर की यायावरीय प्रमुख घटनाओं का इतिहास-सम्मत का उल्लेख करते हुए सिद्ध किया गया है कि आचार्य शंकर ने अपने जीवन के केवल 32 वर्ष के स्वल्प समय में ही सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर विशाल साहित्य का निर्माण किया एवं मत-मतान्तरों की भ्रान्तियों का खण्डन कर अद्वैत सिद्धान्त की स्थापना की।

'शंकर-ग्रन्थावली' में इनके बनाये 64 स्तोत्र संगृहीत हैं। 'भज गोविन्दम्' इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध स्तोत्र है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या 40 मानी जाती है किन्तु उनमें 9 ही प्रामाणिक हैं। 'सौन्दर्य लहरी' और 'प्रपंचसार' इनके लिखे तन्त्रग्रन्थ हैं।

तत्पश्चात् गोस्वामी तुलसीदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व अंकित किया गया है। तुलसीदास का जन्म श्रावण शुक्ला सप्तमी, सम्वत् 1554 वि0 को राजापुर में हुआ। इनके पिता का नाम 'आत्माराम दूबे' और माता का नाम 'हुलसी' था। इनके गुरु 'नरहरिदास' थे। इनकी पत्नी का नाम 'रत्नावली' था, उसकी प्रताड़ना से इनका आध्यात्मिक संस्कार प्रखर हो गया और ये गृहत्याग कर काशी चले गये। इन्होंने अनेक तीर्थस्थानों का भ्रमण किया। इन्होंने सं0 1621 वि0 में 'रामचरितमानस' की रचना की। इनकी प्रामाणिक काव्यकृतियाँ 12 हैं। सन्दिग्ध कृतियों की संख्या 26 है। इन्हें आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ने भक्ति का अवतार माना है।

जनसाधारण के हितार्थ आचार्य शंकर ने जो आचार-संहिता निर्दिष्ट की है, उसके प्रमुख तत्त्व हैं- आत्मज्ञान, ज्ञान, कर्म और व्यवहार का समन्वय, नित्यानित्य वस्तुविवेक, अद्वैतवाद, भक्ति का सामंजस्य, संन्यासमार्ग, प्रतिमा-पूजन, ब्रह्मज्ञान, त्रिविध एषणाओं का त्याग, चित्तवृत्तियों का निरोध और सुभाषित-संग्रह आदि।

इसी प्रकार तुलसी की आचार-संहिता के प्रमुख तत्त्व हैं- ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति। उन्होंने 'मानस' द्वारा आचार की मीमांसा कर मानव-समाज को सदाचार का सन्देश दिया।

आचार्य शंकर अनिश्चयात्मक ज्ञान की अपेक्षा निश्चयात्मक ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं। तुलसी ने ज्ञान का साधनपथ दुर्गम माना है और भक्ति के लिए विवेक-मार्ग का अनुमोदन किया है। आचार्य शंकर के मत से निरन्तर उत्कण्ठायुक्त स्मृति ही भक्ति है किन्तु जब तक मनुष्य वैचारिक क्षेत्र में रहता है तब तक ही द्वैतभाव ग्राह्य हैं। इन दोनों महात्माओं ने भक्ति को आत्मसाक्षात्कार तथा मुक्ति का साधन माना है।

चित्त की एकाग्रता ही योग है, योग की यह परिभाषा और उसके अष्टांग, तुलसी को शंकर-मत के अनुसार ग्राह्य हैं। योगाभ्यास से ब्रह्म का स्फुट ज्ञान और कैवल्य परमपद की प्राप्ति होती है।

आचार्य शंकर का प्रमुख प्रतिपाद्य निर्विशेषाद्वैतवाद है। ब्रह्म नाम, रूप, धर्म, भेद, जाति और गुण से रहित है। वह अनिर्वचनीय, निर्गुण, निरत्यय, निष्प्रपंच और निर्विशेष है। आत्मा ही ब्रह्म है, उसकी प्राप्ति प्रवचन से नहीं होती है। बलहीन व्यक्ति इस आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता है।

तुलसीदास के राम मानवतादर्श के प्रतीक और विष्णु के अवतार हैं। वे शील, शक्ति और सौन्दर्य के कारण पुरुषोत्तम हैं।

अन्त में सिद्ध किया गया है कि यद्यपि योग से अनेक चामत्कारिक सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं, परन्तु योग का अन्तिम लक्ष्य यथार्थ सत्ता के सत्यज्ञान की चेतनापूर्ण आन्तरिक खोज है।

द्वितीय अध्याय में योग-पद्धति का निरूपण किया गया है। समाधि-बोधक 'युज्' धातु से योग शब्द निष्पन्न होता है। योग से आत्मबोध और परमात्म-संयोग होता है। योग में वर्णित आसन और मूलादिबन्ध तथा प्राणायाम आदि के करने से तन और मन तुष्ट-पुष्ट होते हैं। दीर्घायुष्य एवं चित्तस्थैर्य की प्राप्ति होती है। विभिन्न योग-पद्धतियों में व्यवहृत इडा, पिंगला, सुषुम्णा नाडियाँ तथा अन्य शारीरस्थान मूलाधार आदि षट्चक्र और त्रिकुटि आदि हैं। योग के 8 अंग हैं, यम 5 और नियम भी 5 हैं। समाधि के दो भेद हैं- सविकल्प और निर्विकल्प। धौती, नेति आदि षट्कर्म हैं। योग की पद्धतियों में ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग आदि प्रमुख हैं।

आचार्य शंकर के अनेक ग्रन्थों- द्वादश पंजरिका, विवेक चूड़ामणि और

योग तारावली आदि में योग के सन्दर्भ विद्यमान हैं। इसी प्रकार उन्होंने 'ब्रह्मसूत्र' आदि ग्रन्थों के भाष्यों में भी योग के महत्व को स्वीकार किया है।

तुलसी के ग्रन्थों में- 'रामचरितमानस', एवं 'विनयपत्रिका' में योग की चर्चा विशेष रूप से हुई है। आचार्य शंकर और गोस्वामी तुलसीदास, दोनों ही योग-साधना से कैवल्य-प्राप्ति स्वीकार करते हैं। आत्म-तत्त्व की प्राप्ति के लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन प्रत्यक्ष साधन हैं।

ज्ञानयोग साधना के बहिरंग साधनों में नित्यानित्य वस्तु विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व साधनचतुष्टय हैं।

तुलसी ने भक्ति की आवश्यक भूमिका में 'लोकसंग्रहवृत्ति' को भी अंगीकार किया है। यह भक्ति लोक के बीच प्रस्फुटित होती है। इसका विकास परहित साधन की ओर होता है। लक्ष्य-प्राप्ति के लिए इन्होंने मन्त्रयोग को भी प्रमुखता प्रदान की है। 'रामचरित मानस' का तो सम्पूर्ण कथानक ही योग से परिपूर्ण है। उसके सभी पात्र योग-प्रयोग में पटु प्रतीत होते हैं। इसीलिए 'मानस' को ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थ न मानकर योगशात्र का ग्रन्थ मानना अधिक समीचीन होगा। नि:सन्देह इससे मानव जाति को कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का सन्देश मिलता है।

तृतीय अध्याय में आचार का निरूपण किया गया है। दर्शनशास्त्र में ब्रह्म और माया सम्बन्धी यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है तथा दर्शनशास्त्र आचार-मीमांसा द्वारा धार्मिक व्यवसाय की पूर्ति करता है। अत: आचार का दर्शनशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शास्त्रोक्त एवं अनुभूत सत्य को व्यावहारिक जीवन में कार्यान्वित करना ही आचार है।

वेदान्त साधना की सर्वोच्च अवस्था की प्राप्ति ज्ञानमार्ग है तथा फलासक्ति रहित समत्व भाव से कर्म करना कर्ममार्ग है। ब्रह्मदत्त तथा मण्डन मिश्र के 'ज्ञानकर्म समुच्चय' में ज्ञान की प्रधानता है परन्तु भेदाभेदवादी आचार्य भर्तृप्रपंच के मतानुसार 'कर्म-ज्ञानसमुच्चय में दोनों का सम प्राधान्य है।

भक्ति 9 प्रकार की है। भक्तिमार्ग स्वाध्याय और सत्संग से प्रशस्त होता है। तुलसी का भक्तिमार्ग सगुणोपासना का है। उनकी भक्ति स्वतन्त्र और निरपेक्ष है। तुलसी का भगवान् के समक्ष आत्मदैन्य-निरूपण दास्य भक्ति का अभिव्यंजक है।

उन्होंने ब्रह्म को साकार माना है।

शंकर के मतानुसार ज्ञान ही एकमात्र मुक्ति का साधन है। उनकी भक्ति का लक्ष्य 'सत्' की प्राप्ति है। योग-साधना से अन्त:करण की शुद्धि होती है। वे भक्तियोग और ज्ञानयोग में कोई भेद नहीं मानते थे। दोनों से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

व्यवहार-पद्धति को नीति का लोकाचार कहते हैं। आचरण का साधनमूलक रूप योग में समाहित होने से लोकाचार को योग-साधना से पृथक् कर नहीं देखा जा सकता।

आचार्य शंकर का संन्यासमार्ग विरक्तिमूलक है एवं उनकी योग-साधना पातंजल-सम्मत है। आचार्य शंकर ने मन्द बुद्धि लोगों के लिए हिन्दू-मन्दिरों में पंचदेवोपासना को प्रतिष्ठित किया। तुलसीदास ने यम-नियम आदि योगतत्त्वों का एकमात्र फल भगवद्भक्ति को ही माना है।

चतुर्थ अध्याय में योग के अधिकारियों का निरूपण किया गया है। योग के अधिकारी उत्तम, मध्यम, अधम और अधमाधम कोटि के होते हैं। जो अविवेकी, खाद्याखाद्य विचार-विहीन, अनभ्यासी, मलिन, निर्बल और विक्षिप्त होते हैं, वे योग के अनधिकारी हैं।

योगियों के 4 भेद होते हैं- 1- योगारूढ 2- युक्त 3- युञ्जान और 4- सिद्ध। योगसिद्धि के लिए त्रिविध एषणाओं का त्याग अनिवार्य है।

आचार्य शंकर के मत से नित्य, नैमित्तिक व प्रायश्चित कर्म करने से पापक्षय होता है। तप और निश्चय से निर्मल मन ज्ञानयोग-साधना के लिए दृढ़ होता है। उनके द्वारा किया गया उपासना का विधान उनके लिए है, जिन्हें बुद्धिमान्द्य आदि के कारण अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता है।

तुलसी के मानस के सभी प्रमुख पात्र- राम, सीता, हनुमान, लक्ष्मण आदि योग-साधक थे। उनके ग्रन्थों में योग के अधिकारी की योग्यता यह है कि वह शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ हो।

पंचम अध्याय में चित्तवृत्तियों का निरूपण किया गया है। चित्त द्रष्टा है

और दृश्य के सभी पदार्थों को ग्रहण करने में सक्षम है। वह विभु है। उसके 5 भेद हैं- क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। प्रत्येक मानसिक परिवर्तन को वृत्ति कहते हैं। योगसूत्र के अनुसार प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच वृत्तियाँ होती हैं। क्लेशों की हेतुभूत और कर्माशय की हेतुभूत वृत्तियाँ 'क्लिष्ट' होती हैं और वैराग्य द्वारा गुणाधिकार को समाप्त कर विवेक ख्याति में प्रवृत्त कराने वाली वृत्तियाँ 'अक्लिष्ट' होती हैं।

तुलसी के ग्रन्थों में प्रमाणवृत्ति, सकाम चित्तवृत्ति, भक्तिवृत्ति, वात्सल्य वृत्ति आदि अनेक चित्तवृत्तियां हैं। सकाम चित्तवृत्ति और भक्तियोग का परस्पर अन्योऽन्याश्रय सम्बन्ध है। भक्तियोग मोक्ष का देने वाला है। इसी प्रकार निष्काम चित्तवृत्ति और ज्ञानयोग परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

शंकर के अनुसार चित्तवृत्ति-निरोध आगम, अनुमान, ध्यान और योगाभ्यास द्वारा ही सम्भव है। एवं तुलसीदास के अनुसार वैराग्य, प्राणायाम, सात्विक आहार, फलासक्ति-त्याग और भगवद्भक्ति से चित्तवृत्ति का निरोध होता है।

षष्ठ अध्याय में योगसिद्धियों का निरूपण किया गया है। योगसिद्धि का अर्थ है- चित्तवृत्ति-निरोध से मिलने वाला फल। योग-विभूति भी योगसिद्धि का ही समानार्थक शब्द है। वेद का स्वाध्याय, यज्ञ, दान, तपश्चर्या और उपवास- ये सब ज्ञान-प्राप्ति के साधन हैं एवं इन्हीं से अन्तःकरण शुद्ध होता है। निष्काम कर्म करने से चित्तशुद्धि होती है।

शंकराचार्य ने परकायप्रवेश, दूर-श्रवण, दूरदर्शन और विवेकख्याति आदि को प्रमुख योग-विभूतियाँ माना है। उनके मत से विवेकज्ञान से वैराग्य होने पर योग के अन्तिम लक्ष्य 'कैवल्य' की प्राप्ति होती है।

तुलसी भी आत्मा के परमात्मा से मिलन को योगसिद्धि मानते हैं। वे भक्ति द्वारा पूर्ण समर्पण को ही योग का फल मानते हैं। तुलसी के ग्रन्थों में वर्णित- हनुमान का आकाश-गमन, शरीर का आकार बड़ा कर लेना, छोटा कर लेना, हल्का करना, भारी करना, अन्तर्धान होना एवं अंगद का स्थैर्य और शरीर का भारी कर लेना आदि प्रमुख सिद्धियाँ हैं। लक्ष्मण को 'यत्रकामावसायित्व' सिद्धि प्राप्त थी। यही सिद्धि सीता को भी प्राप्त थी।

मोक्ष में साधक सिद्धियों में आसनसाध्यसिद्धि, कण्ठकूप सिद्धि और नैष्कर्म्य सिद्धियाँ प्रमुख हैं।

सप्तम अध्याय में कर्म-सिद्धान्त का निरूपण किया गया है। हर समय कुछ न कुछ करने की प्रवृत्ति ही कर्म है। वैशेषिक दर्शन में कर्म से तात्पर्य गति से है। कर्म अपने सभी रूपों में अस्थायी है। आत्मा कर्म से रहित है।

योगदर्शन के अनुसार कर्मों को शुक्ल, कृष्ण, शुक्लकृष्ण और अशुक्लाकृष्ण नामक चार भागों में बांटा जाता है। सकाम कर्मों के फलस्वरूप कर्मजन्य कर्माशय बनते हैं, इन्हें 'विपाक' भी कहते हैं। इन्हीं के फलस्वरूप जीव पुनर्जन्म धारण करता है। योगदर्शन में कर्म का विधान प्रामाणिक माना है। इससे ही मनुष्य के जीवन, स्वरूप तथा अवधि का निर्णय होता है।

आचार्य शंकर ने भी कर्मफल की अनिवार्यता को स्वीकार किया है। जब ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो कर्म नहीं रहते हैं- "कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हें।" तुलसीदास जी ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् कर्म का अस्तित्त्व नहीं मानते। गीता का भी यही मन्तव्य है कि जिस प्रकार अग्नि ईंधन को भस्मसात् कर देती है, उसी प्रकार ज्ञानाग्नि सम्पूर्ण कर्मों को दग्ध कर देती है। राम भी कर्मफल के सिद्धान्त को मानते हैं- "जो जस करइ सो तस फल चाखा।" योगी को कर्मफल की भावना से ऊपर उठकर निष्काम कर्म करना चाहिए।

अष्टम अध्याय में योग-सुभाषित संकलित कर उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है।

सुभाषित, सूक्त या सूक्ति समानार्थक शब्द हैं, वेदमन्त्रों को भी 'सूक्त' कहा जाता है। आचार्य शंकर द्वारा लिखित सभी ग्रन्थों में सूक्तियाँ विद्यमान हैं। 'विवेक चूड़ामणि' में सर्वाधिक सुभाषित सुप्रयुक्त हैं। ये सुभाषित अर्थगाम्भीर्य और सूक्ष्मता के कारण 'गागर में सागर' हैं तथा संजीवनी के समान सभी के लिए सुखद हैं।

गोस्वामी जी की योग सम्बन्धी सूक्तियों में आत्म-बोध, कर्मयोग, ज्ञानयोग, जपयोग तथा भक्तियोग का निरूपण मार्मिक ढंग से हुआ है। उनकी सूक्तियों के अनुशीलन से यह तथ्य भी उजागर होता है कि वे दार्शनिक तत्त्व- प्रतिपादन में शंकराचार्य के सिद्धान्तों का अनुसरण करते हैं।

नवम अध्याय उपसंहारात्मक है, जिसमें सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध का दोहन कर निष्कर्ष-नवनीत निष्पादित किया गया है। इस शोध-प्रबन्ध से यह स्थापना होती है कि आचार्य शंकर निर्विशेष ब्रह्म-अद्वैतवादी होते हुये भी मन्दबुद्धि वालों की सविशेष ब्रह्म द्वैतवादी धारा के विरोधी नहीं थे, इसीलिए उन्होंने अनेक देवी-देवताओं की आराधना एवं मन्दिरों में मूर्तियों की स्थापना भी कराई तथा तुलसीदास सविशेष ब्रह्म द्वैतवादी होते हुये भी जीवात्मा को परमात्मा का ही अंश मानते थे। उन्हें भगवान् के साकार रूप के साथ-साथ भगवान् का निराकार स्वरूप भी स्वीकार्य था- "कर बिनु कर्म करइ विधि नाना।" अतएव दोनों के रथ-पथ पृथक्-पृथक् होते हुये भी दोनों का गन्तव्य एक ही है। एक ज्ञानयोग के और दूसरे भक्तियोग के उपासक थे। एक अद्वैतवादी और दूसरे द्वैतवादी थे। एक की विचारधारा संस्कृत भाषा में और दूसरे की हिन्दी भाषा में प्रवाहित हुई। इस प्रकार यह शोध-प्रबन्ध संस्कृत और हिन्दी का, आचार्यत्व और सन्त स्वभाव का, ज्ञानयोग और भक्तियोग का तथा अद्वैत और द्वैत का अद्‌भुत संगम है।



